द्रव्य, विनिमय तथा बैंकिंग

का परिचय

(भारतविषयक विशेष विवरण सहित)

An Introduction to Money, Exchange and Banking
with special reference to India
का हिन्दी अनुवाद)

लेखक

राज नारायण माथुर

एम. ए., एफ. आर. ई. एस (लंदन) (स्वर्णपदक प्राप्त) पी. ई. एस
प्रिंसिपल वल्लभ महा विद्यालय (गवर्नमैंट डिग्री कालेज)
मण्डी (हिमाचल प्रदेश)

एस० चंद एण्ड कम्पनी
पुस्तक प्रकाशक
फव्वारा — दिल्ली

प्रस्तावना

इस प्रकार के ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर इसकी आवश्यकता के सम्बन्ध में कुछ कहना अनुचित न होगा। दिल्ली विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ बहुत समय तक घनिष्ठ सम्पर्क रहने के कारण मुझे इस बात का अनुभव हुआ कि चल-अर्थ (Currency) तथा विनिमय (Exchange) के सूक्ष्म तथा गूढ़ सिद्धान्तों को लगातार समझते रहने में उन्हें कितनी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। बाज़ार में आज इस विषय पर अनेक पुस्तकें भरी पड़ी हैं, जिनमें से कुछ निश्चय से बहुत अच्छी हैं। किन्तु इस प्रकार के उपलब्ध अधिकांश ग्रन्थों में कुछ-न कुछ ऐसी त्रुटियाँ हैं कि उनकी उपयोगिता कम हो जाती है। या तो वह अपने विषय में अत्यधिक सीमित हैं और इन विषयों में किसी एक विषय का ही सीमित दृष्टिकोण से वर्णन करती हैं अथवा उनकी भाषा अत्यधिक क्लिष्ट है और उनके तथ्य तथा अंक कम से कम कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों में पुराने पड़ चुके हैं। इस प्रकार मुद्रा, विनिमय तथा बैंकिंग की उलझन-भरी समस्या के सम्बन्ध में एक विस्तृत ग्रन्थ के अभाव के कारण मुझे प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना करने को विवश होना पड़ा। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि चल-अर्थ तथा बैंकिंग के आरंभिक सिद्धान्तों का इस प्रकार वर्णन करने वाले ग्रन्थ की—जिसमें भारतीय आर्थिक जीवन का उचित रूप से विशेष वर्णन हो—बहुत समय से आवश्यकता प्रतीत की जा रही थी।

अर्थशास्त्र पिछले कुछ वर्षों से लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ आगे बढ़ रहा है। किन्तु विषय की जटिलता के कारण उसके पूर्ण परिणामों के सम्बन्ध में न तो पता ही चलता है और न उनकी गणना ही की जा सकती है। बैंकिंग तथा चल-

अर्थ के विषय में जनता की रुचि आज के समान कभी नहीं थी। भारत में भी स्थिति बहुत कुछ बदल गई है और बैंकिंग जाँच कमेटी की रिपोर्ट के प्रकाशित होने, रिज़र्व बैंक अधिनियम के पास होने, और उसके पश्चात् सन् १९३४ में रिज़र्व बैंक अधिनियम के पास होने और उसके भी पश्चात् सन् १९३५ में ही रिज़र्व बैंक की स्थापना की जाने से स्थिति तेज़ी से बदल गई है।

चल अर्थ के विषय में लगातार उतार-चढ़ाव आते रहने के कारण विद्यार्थियों के मस्तिष्क में उसकी समस्याएँ इतनी अधिक भर गई हैं कि कभी २ तो वह अत्यधिक गड़बड़ में पड़ जाते हैं। अतएव इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया गया है कि विद्यार्थी लोग चल-अर्थ के सिद्धान्तों तथा समस्याओं को सुगमता से समझ सकें। मेरा मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि चल-अर्थ की तात्कालिक समस्याओं तथा सिद्धान्तों की स्पष्ट प्रचलित तथा प्रबल उदाहरणों द्वारा व्याख्या कर दी जावे। वास्तव में इस ग्रन्थ के प्रकाशन करने का उद्देश्य इस विषय को तर्कपूर्ण तथा नियमबद्ध ढंग पर स्पष्ट क्रम देते हुए उपस्थित करना है।

इस ग्रन्थ को पूर्ण विवेचनात्मक बनाने का यत्न किया गया है, जिससे इसमें उत्तरी भारत के सभी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम को सम्मिलित किया जा सके। यह निश्चयपूर्वक आशा की जाती है कि यह ग्रन्थ अर्थशास्त्र के सभी विद्यार्थियों और विशेषकर चल-अर्थ तथा बैंकिंग की जटिल समस्याओं से जूझने वालों के लिए एक चिरसंगिनी पुस्तक का काम देगा। विद्यार्थियों को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान कराने के लिये प्रत्येक अध्याय के अन्त में उसका संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट सारांश दिया गया है। उसके पश्चात् प्रत्येक अध्याय के अन्त में उस विषय के प्रश्न भी दिये गए हैं। इनमें से अनेक प्रश्न-उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों के अर्थशास्त्र के विभिन्न परीक्षापत्रों से भी लिये गए हैं। इन प्रश्नपत्रों को देखकर विद्यार्थी लोग ऐसे समय विशेष लाभ उठा सकेंगे, जब वह ग्रन्थ को अंतिम बार एक सरसरी दृष्टि में देखना चाहेंगे। यदि विद्यार्थियों को इस विषय की जटिलता इस ग्रन्थ के द्वारा कुछ भी दूर होती हुई जान पड़ी तो मैं अपने इस प्रयत्न को सार्थक समझूंगा।

इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण इंगलिश में १९३५ में प्रकाशित किया गया

था। यह प्रसन्नता की बात है कि इस ग्रन्थ की उपयोगिता को सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया गया। इसीलिये इस ग्रन्थ के एक के बाद एक कई संस्करण हुए और १९४८ में इसका छटा संस्करण इंगलिश में ही छपा। यद्यपि इसका इंगलिश का छटा संस्करण भी समाप्त हो चुका है और सातवां संस्करण प्रेस में जा रहा है, किन्तु इस बीच इसके हिन्दी संस्करण की मांग अत्यधिक आने के कारण पाठकों की सेवा में इसका हिन्दी संस्करण उपस्थित किया जा रहा है।

अर्थशास्त्र एक जटिल विषय है और उसमें अपने विषय के अनेक पारिभाषिक शब्दों की भरमार है। इसी कारण हमको उसकी भाषा के सम्बन्ध में उसके इंगलिश संस्करण में भी कुछ आरंभिक पाठकों से क्षमा माँगनी पड़ी थी। वास्तव में इस प्रकार के पारिभाषिक विषय में अत्यंत यत्न करने पर भी भाषा की जटिलता को पूर्णतया दूर नहीं किया जा सकता। तौ भी इस सम्बन्ध में पर्याप्त सतर्कता से काम लेने का यत्न किया गया है। वास्तव में भाषा की सुगमता उपन्यास, नाटक तथा कहानियों में ही मिल सकती है। अन्य सभी विषयों में कुछ-न-कुछ जटिलता रखनी ही पड़ेगी।

इसके हिन्दी के अनुवाद के सम्बन्ध में तो पाठकों को और भी शिकायतें हो सकती हैं। किन्तु इस विषय में कुछ बातें विशेष रूप से विचारणीय हैं। प्रथम यह कि हिन्दी के कुछ अर्थशास्त्रियों के अनेक वर्षों से यत्न करते रहने पर भी इस विषय के सभी प्रामाणिक शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का अभी तक भी हिन्दी में अनुवाद नहीं किया जा सका है। १९३२ में भारतीय ग्रन्थमाल वृन्दावन से अर्थशास्त्र शब्दावली (Glossory of Economic Terms) नामक एक उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित किया गया था। किन्तु उसमें अर्थशास्त्र के अनेक उपयोगी पारिभाषिक शब्द छूट गये थे, साथ ही उसके कुछ अर्थों को आज ठीक भी नहीं माना जाता। फिर भारतीय संविधान परिषद् द्वारा जो भारतीय संविधान का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया गया है, उसमें भी अर्थशास्त्र के कुछ शब्द आए हैं। उदाहरणार्थ चल-अर्थ (Currency), विधि (Law)। मतभेद होते हुए भी उन सब शब्दों को मानने के लिये हम वैध रूप से बाध्य हैं। किन्तु इन सब

शब्दों के होते हुए भी इस ग्रन्थ के अनुवाद में हमारे सम्मानित अनुवादकों को बहुत कुछ अपने नवीन प्रारिभाबिक शब्द बनाने पड़े हैं ।

इस ग्रन्थ का अनुवाद प्रसिद्ध हिन्दी लेखक तथा पत्रकार आचार्य चन्द्र शेखर शास्त्री ने किया है । फिर भी हिन्दी के अनुवाद में कुछ जटिलता आ ही गई है, जो कि विषय की क्लिष्टिता को देखते हुए बहुत अनुचित नहीं जान पड़ती ।

पाठकों की सुविधा के लिये हिन्दी तथा इंगलिश पारिभाषिक शब्दों की तालिका इस पुस्तक के अन्त में दे दी गई है । यह तालिका आचार्य जी की ही तैयार की हुई है । आशा है उसके पाठकों के लिये उसकी सहायता से इसकी जटिला पर्याप्त कम हो जावेगी ।

आशा है, हिंदी संसार मेरे इस प्रथम हिन्दी प्रयास का पूर्ण स्वागत करेगा ।

वल्लभ महाविद्यलाय
मंडी (हिमाचल प्रदेश)
१ सितम्बर १९५१ ई०

—राजनारायण माथुर

विषयानुक्रमणिका

पहला अध्याय

विनिमय-प्रणाली

वस्तु-विनिमय (Barter) की परिभाषा:—समाज की प्रारम्भिक अवस्था में इच्छायें अधिक नहीं होतीं और वे सुगमतापूर्वक पूर्ण हो जाती हैं। प्रत्येक मनुष्य प्रायः अपनी आवश्यकता के अनुसार वस्तुएं उत्पन्न कर लेता है किन्तु यदि वह आवश्यकता से अधिक वस्तुएं उत्पन्न करता भी है तो वह उन्हें देकर दूसरे व्यक्ति से उसके श्रम की अतिरिक्त उत्पत्ति बदले में ले लेता है। वस्तुओं का वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले विनिमय 'वस्तु-विनिमय' कहा जाता है।

वस्तु विनिमय के दोष:—जैसे-जैसे इच्छाएं बढ़ने लगती हैं और उनकी पूर्ति के नवीन मार्गों की खोज होती जाती है वस्तु-विनिमय बहुत ही असुविधा-जनक होता जाता है, और विशेषकर वह श्रम-विभाजन पर आधारित सभ्य समाज के लिये तो सर्वथा अयोग्य होता है। स्वभावतया वस्तु-विनिमय एक दोहरा कार्य होता है जिसका आधार दो व्यक्तियों के बीच समझौते की कल्पना पर होता है। जब विनिमय योग्य वस्तुओं की संख्या बढ़ जाती है तब प्रायः यह सम्भव नहीं होता कि दो ऐसे व्यक्ति मिल सकें जिनमें से दोनों एक दूसरे की इच्छित वस्तुएं दे सकते हों। उदाहरणार्थ, घोड़ा देने और कोट लेने की इच्छा रखने वाले मनुष्य की इच्छा उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक उसे उसके घोड़े के बदले कोट दे सकने वाला व्यक्ति न मिल जावे। यदि ऐसे दो व्यक्ति मिल भी जावें जो एक दूसरे की इच्छित वस्तुएं दे सकते हों तब भी मूल्य के सामान्य माप के अभाव में उन दोनों वस्तुओं के परस्पर विनिमय की दर किस प्रकार निर्धारित होगी? यह तो सम्भव नहीं है कि घोड़े वाला अपने घोड़े को बिलकुल कोट के बराबर मान ले और यदि वह अपनी सम्पत्ति को अधिक मूल्यवान समझेगा तो विनिमय हो ही नहीं सकेगा क्योंकि

कोट वाले के लिये घोड़े का एक भाग किसी काम का नहीं। अतः साधार वस्तु-विनिमय में तीन असुविधायें होती हैं—देने और चाहने वाले व्यक्तियों समान इच्छा की असम्भावना, एक निश्चित वस्तु के द्वारा न होने वाले विनिम की उलझन, और मूल्यवान वस्तुओं को विभाजित करने और बांटने के कि साधन की आवश्यकता।

मुद्रा (Money) की उत्पत्ति और परिभाषा:—वस्तु-विनिमय की इ कठिनाइयों को दूर करने के लिये एक ऐसी मध्यस्थ वस्तु को चुनना आवश्यक है वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय में सदा स्वीकार की जावे और जो अन्य स वस्तुओं के मूल्यों की माप और तुलना का आधार बन सके। ऐसी वस्तु को "मुद्र कहते हैं। इसकी परिभाषा इसे "ऐसी कोई वस्तु" कह कर कर सकते हैं "जि वस्तुओं के भुगतान और दूसरे व्यापारिक ऋणों को चुकाने में विस्तृत रूप स्वीकार किया जावे।"[1] मार्शल ने मुद्रा की परिभाषा करते हुए कहा है- "वे सब वस्तुएं जो संशय अथवा विशेष जानकारी के बिना (किसी भी स्थान अथ समय में) साधारणतया वस्तुएं तथा सेवाएं क्रय करने और व्ययों का भुगतान क के लिये प्रयुक्त की जाती हैं, मुद्रा हैं।"[2] कुछ समय पूर्व ही कोल (Cole) मुद्रा की परिभाषा करते हुए उसे केवल क्रय-शक्ति—वह शक्ति जो वस्तुओं क्रय कर सके—कहा है।[3] अन्य अर्वाचीन लेखकों, विशेष कर अंग्रेज़ अ अमरीकन लेखकों ने भी जिन्होंने मुद्रा शब्द का प्रयोग साधारण प्रचलित अ में नोटों, सिक्कों तथा बैंक की जमा (Bank Balances) (जिनके लिये

---

(१) राबर्टसन, मनी, पृ० २-३।

(२) मनी, क्रेडिट एण्ड कामर्स, पृ० १३। क्राउथर ने मुद्रा की परिभा करते समय उसे "साधारणतया विनिमय के साधन (ऋण उतारने का साधन) अ मूल्य के संचय और उसकी माप के रूप में स्वीकृत कोई भी वस्तु" कहा है। देखिये "एन आउटलाइन आफ़ मनी" पृ० ३५०।

(३) जी० डी० एच० कोल, व्हाट एवरी बाडी वान्टस टू नो एबाउट म पृ० २१। मुद्रा के अर्थ की अधिक विस्तृत व्याख्या के लिए जान्सन, मनी ए करेन्सी पृ० ६-७ पढ़िये।